ISSN : 2231-6191

जन विकल्प

17

हिन्दी उपन्यास - 3 : 2001-2022

विकल्प तृशूर

ISSN : 2231-6191

जन विकल्प

अंक : 17 जुलाई-दिसंबर 2023

पीयर रिव्यूड पत्रिका

हिन्दी उपन्यास-3 : 2001-2022

प्रबन्ध संपादक
डॉ. के.एम. जयकृष्णन

संपादक
पी. रवि

सह संपादक
डॉ. बी. विजयकुमार
डॉ. सी. राधामणी

सलाहकार समिति
रवि भूषण (रांची)
विनोद शाही (जालंधर)
वि. कृष्णा (हैदराबाद)
देवेन्द्र चौबे (नई दिल्ली)
विनोद तिवारी (नई दिल्ली)

संपादन सहयोग

डॉ. के.जी. प्रभाकरन डॉ. वी.जी. गोपालकृष्णन
डॉ. ए. सिन्धु डॉ. रश्मि कृष्णन

पीयर रिव्यू टीम

डॉ. के.के. वेलायुधन, प्रोफेसर (Rtd), करुकुट्टी, एरणाकुलम, केरल।
डॉ. बजरंग बिहारी तिवारी, प्रोफेसर, देशबंधु कॉलेज, दिल्ली वि.वि. दिल्ली।
डॉ. प्रज्ञा, प्रोफेसर, किरोड़ी मल कॉलेज, दिल्ली वि.वि., दिल्ली।
डॉ. उमा शंकर चौधरी, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली वि.वि., दिल्ली।
डॉ. प्रोमिला, एसोसिएट प्रोफेसर, EFLU, हैदराबाद, तेलंगाना।
डॉ. महेश एस., एसिस्टेंट प्रोफेसर, कालिकट वि.वि., मलप्पुरम, केरल।

आवरण	टाईप सेटिंग	लेआउट
विकल्प तृशूर	विष्णु	विपिनदास

कार्यालय संपर्क

VIKALP BHAVAN,
Puthurkkara, Ayyanthole P.O., Thrissur-680 003. Kerala
85475 68534, 94964 1829(
vikalpthrisur@gmail.com
www.vikalpthrisur.org
E-mail : vikalpthrisur@gmail.com

संपादकीय संपर्क

P. Ravi, 'Parayil'
URA-119, Unichira, Changampuzha Nagar P.O.
Ernakulam, Kerala-682 03
09446269365
456raviparayil@gmail.com

सहयोग राशि : यह अंक : रु. 180/-, चार अंक : रु. 600/-

संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।
पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं।
संपादक एवं संपादक मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है।
समस्त विवाद तृशूर न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

संपादक की ओर से

सभ्यता और संस्कृति के भेद को मिटा कर संस्कृति की अर्थवत्ता एवं गंभीरता को मिटाने की साजिश जोरदार ढ़ंग से हो रही है। यह कोशिश अनजाने नहीं हो रही है बल्कि योजना-बद्ध तरीके से की जा रही है। ये दोनों मानवजीवन की विकास यात्रा के बीच पुराने समय में आपस में मिलते और पृथक होती जा रही थीं। लेकिन धीरे-धीरे जीवन की विकास यात्रा के साथ इसका पृथकत्व साफ होने लगा। धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित 'हिंदी साहित्य कोश' बता रहा है कि "हमारी समझ में संस्कृति और सभ्यता में अन्तर किया जाना चाहिए। सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक राजनीतिक संस्थाओं से समझना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होती है। इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिन्तन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएं समझनी चाहिए, जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के लिए साक्षात उपयोगी न होते हुए भी उसे समृद्ध बनाने वाली है।" (पृष्ठ 712) प्रस्तुत उद्धरण सभ्यता और संस्कृति के बीच के साम्य एवं वैषम्य को रेखांकित करने में समर्थ है, ऐसा नहीं है। इसका उद्देश सिर्फ दोनों के बीच अन्तर है, उस पर ध्यान देने की जरूरत है, यह कहना मात्र है। आज सबके आगे संस्कृति शब्द जोड़ने का प्रयास हो रहा है। जैसे - बाजारी संस्कृति, उपभोक्तृ संस्कृति, अपसंस्कृति, जनप्रिय संस्कृति आदि आदि। क्यों सभ्यता की जगह संस्कृति शब्द का प्रयोग किया जा रहा है - यह एक अहम सवाल है। इस तरह की संस्कृतियों के बीच साहित्य को बचाना एक अनिवार्यता है। यह भी सही है कि साहित्यिक संसार में भी इस तरह की चर्चाएँ सकारात्मक एवं नकारात्मक तरीके से चल रही हैं। पूंजी की संप्रभुता आज हर क्षेत्र में एक सच्चाई है, शायद यही इसका प्रमुख कारण होगा। साहित्य का उत्पादन, विपणन, मूल्य-निर्धारण सबके पीछे पूँजी का हाथ है।

साहित्य के क्षेत्र में आज उपन्यास का दौर है। कोई संदेह नहीं कि इसके पीछे भी पूँजी व व्यापार है। कविता, कहानी, आत्मकथा की अपेक्षा उपन्यास का बाज़ार अधिक गरम है। इसलिए कवि, कहानीकार आज उपन्यास लिखने लगे हैं, प्रकाशक भी इसे ही प्रोत्साहन दे रहे हैं। इसका एक दोष यह भी दिखाई देता है कि उपन्यास का आकार छोटा हो रहा है। इसलिए उसमें समाज जीवन की गतिविधियों को समेटने की जगह कम होती जा रही है, या बाजार को लक्ष्य करके उपन्यास को लघु बनाने का काम हो रहा है। इसलिए लंबी कहानी और उपन्यास के बीच का अन्तर भी मिटता जा रहा है। पत्र-पत्रिकाओं में लंबी कहानी के अन्तर्गत प्रकाशित रचनाएँ पुस्तक रूप ग्रहण करते समय उपन्यास का काया अपनाती है। लेखक, आलोचक और पाठक भी इस पर कोई निर्णय नहीं ले सकते हैं, नहीं दे सकते हैं।

इस अनिर्णय के दौर में 'जन विकल्प' के लगातार तीसरा अंक भी उपन्यास पर केन्द्रित करना पड़ा है। इस अंक में भी सन् 2000 के बाद प्रकाशित उपन्यासों को स्थान दिया गया है। क्रमहीनता इस अंक के अनुक्रम की विशेषता है। इस अंक में विशिष्ट उपन्यासकारों के साथ युवा लेखकों को भी स्थान देने की कोशिश की गई है। अंक की गुणवत्ता का निर्णय पाठक ही बता सकते हैं।

डॉ. पी. रवि

अनुक्रम

संपादक की ओर से		03
1. विषमता और वेदना की अभिव्यक्ति (**उत्कोच** - जयप्रकाश करदम)	राम चन्द्र	07
2. हमारे समाज की बेतरतीबी का विश्वसनीय ब्यौरा (**रुणियाबास की अंतर्कथा** - जितेन्द्र भाटिया)	पुनीत कुमार राय	22
3. स्मृति और सपनों से बुनी एक यथार्थ कथा (**चंचला चोर** - शिवेन्द्र)	विभास वर्मा	29
4. दुख के दरिया में उम्मीदों का गोता (**अगम बहै दरियाव** - शिवमूर्ति)	धीरेन्द्र प्रताप सिंह	34
5. मैत्री के सार्वजनिक विस्तार का सपना (**पानी भीतर फूल** - एकांत श्रीवास्तव)	प्रभाकरन हेब्बार इल्लत	41
6. सभ्यता की आलोचना (**मीठो पाणी खारो पाणी** - जया जादवानी)	पद्मप्रिया श्रीरामकवचम	57
7. मध्यकालीन स्त्री मुक्ति का दस्तावेज (**रंग राची** - सुधाकर अदीब)	प्रीति सागर	68
8. दुनियावी पूर्वाग्रहों से परे (**थोड़ी-सी ज़मीन, थोड़ा आसमान** - जयश्री राय)	प्रोमिला	74
9. इस एक दुनिया में बसे अनेक संसार (**उधर के लोग** - अजय नावरिया)	आर. शशिधरन	82
10. दलित स्त्री के जीवन की संघर्ष-गाथा (**दाई** - टेकचन्द)	जे. आत्माराम	88
11. गांधी और सरलादेवी के बहाने कुछ ... (**गांधी और सरलादेवी चौधरानी : बारह अध्याय** - अलका सरावगी)	रूबल मित्तल	99

12. अंधेरे की कथा कहने की जद्दोजहद करती कादंबरी — मेरी हांसडा — 107
(**सुखी घर सोसाइटी** - विनोद दास)
13. महानगर और सुखी घर सोसाइटी — स्वीटी लोहार — 114
(**सुखी घर सोसाइटी** - विनोद दास)
14. उत्तर-पूँजीवादी समय में शुद्धिपत्र का पाठ — राजेश्वरी के. — 120
(**शुद्धिपत्र** - नीलाक्षी सिंह)
15. रूढ़ीवादी परम्परा की सलीब पर टँगी ज़िन्दगानी... — अशोक आशीष — 128
(**अपनी सलीबें** - नमिता सिंह)
16. बाल विधवा या प्रतिभा संपन्न रचनाकार — लेखा एम. — 135
(**मल्लिका** - मनीषा कुलश्रेष्ठ)
17. एक प्रेमकथा, जिसकी परिधि में समूची प्रकृति है — प्रिया राय — 142
(**चिड़िया बहनों का भाई** - आनंद हर्षुल)
18. परम्परा के बंधनों से जागरण तक की कथा — श्रीलेखा के. एन. — 152
(**मेरी आवाज़ सुनो** - जुमसी सिराम 'नीनो')
19. ग्राम्य जीवन में दलित स्त्री की त्रासद-स्थिति — प्रतिमा प्रसाद — 159
(**गाँव भीतर गाँव** - सत्यनारायण पटेल)
20. विज्ञान कथाओं का प्रमेय सिद्ध करने का प्रयास — शरद कुमार — 171
(**प्रमेय** - भगवंत अनमोल)
21. स्त्री के रंगीन आकाश पर धर्म का छद्म-पांव — मीनू शिवन — 178
(**हलाला** - भगवानदास मोरवाल)
22. धर्म की सीमाओं के परे भारतीय साझी संस्कृति — राहुल के. एस. — 187
(**मिल्कियत की बागडोर** - जयनंदन)

विषमता और वेदना की अभिव्यक्ति है 'उत्कोच'

राम चंद्र

भारतीय सामाजिक-व्यवस्था के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि सामाजिक संरचना की असमान निर्मितियों एवं परम्पराओं में ही विषमता के बीज विद्यमान हैं। विषमता की विविध जड़ें बहुत गहरी हैं। सदियों पहले रोपी गईं वही विषमताएँ तमाम दुःख एवं वेदनाओं की जनक हैं। एक साहित्यकार अपनी रचनात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से वैषम्यपूर्ण समाज की वेदनाओं में झुलसते जनमानस के विविध चरित्रों को अपनी रचनात्मकता में ढालता है। उन बहुविध चरित्रों के माध्यम से मनुष्य-जीवन, समाज और राष्ट्र की अवधारणा को वह अर्थवान बनाने का प्रयास करता है, सोच और बदलाव की नई राह सुझाता है। एक प्रतिबद्ध रचनाकार राष्ट्र के विकास में बाधक तत्वों-कारकों को चिन्हित कर राष्ट्रीय अवधारणा को पुनर्सृजित करने का प्रयास करता है। सुप्रसिद्ध समकालीन कथाकार जयप्रकाश कर्दम का नवीनतम उपन्यास 'उत्कोच' सामाजिक-आर्थिक विषमता के मुख्य कारकों की तह तक ले जाने का ऐसा ही एक सफल प्रयास है. सरकारी कार्यालयों में व्याप्त उत्कोच अर्थात रिश्वत ने भ्रष्टाचार का जो विकराल स्वरूप ग्रहण किया है उससे समाज में असमानता एवं असंतुलन निरंतर बढ़ता जा रहा है। इस उपन्यास का कथानक यह पुष्ट करता है कि रिश्वत के कारण पनपे भ्रष्टाचार से समाज में जो विषमता व्याप्त होती जा रही है, उसका अत्यधिक प्रभाव समाज के सबसे कमजोर एवं उपेक्षित वर्ग पर पड़ेगा। इससे असमानता और गरीबी की खाई और गहरी होती जाएगी। समाज में व्याप्त होती जा रही रिश्वतखोरी की लिप्सा-तृष्णा ने समाज को असंतुलित कर दलित-उपेक्षित-मेहनतकश आमजन में दुःख एवं वेदनाओं को जन्म दिया है।

संसार में वेदनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न दुःख के कारणों की खोज और उसकी व्याख्या तमाम साधकों-मनीषियों ने अपने-अपने ढंग से किया। तथागत गौतम बुद्ध ने दुःख के मूल कारण को अज्ञान एवं अनंत इच्छाओं के पूर्ण न हो पाने के परिणाम के रूप में चिन्हित करके व्याख्यायित किया कि प्रत्येक दुःख का कारण तृष्णा है। किसी भी तरह की अपेक्षा या उम्मीद भी दुखों को जन्म देती है। दुःख के तमाम कारणों की खोज करते हुए इसके निवारण का मार्ग भी तथागत ने सुझाया है। अर्थात किसी भी चीज के लिए तृष्णा से विरत रहना दुखों से मुक्ति है। वस्तु ही नहीं अपितु किसी

इंसान या किसी भी तरह के संबंधों में उम्मीदों के दैनंदिन प्रभाव से हम सभी भली-भांति अवगत हैं। यह सुविज्ञ है कि विषमतापरक समाज एवं भौतिक-सांसारिक जीवन में मनुष्य की आकांक्षाओं-इच्छाओं की कोई सीमा नहीं होती। असीमित इच्छाओं की अपूर्णता अंततः घनीभूत पीड़ा देती है। उन आकांक्षाओं, उम्मीदों या इच्छाओं को कैसे परिमित किया जाए, उसको कैसे सीमाओं में बांधा जाए? क्योंकि इसी तृष्णा का अपरिमित स्वरूप ही रिश्वत और भ्रष्टाचार को जन्म देता है और समता में बाधक बनता है। किसी भी चीज के प्रति अपरिमित आकांक्षाएँ दुःख एवं वेदना का कारण बनती हैं। अनंत इच्छाओं के ताप के प्रज्वलन की अज्ञानता में भस्म होना ही इसकी परिणति है। इसी अज्ञानता के प्रज्वलन में 'उत्कोच' उपन्यास की नायिका श्यामा भस्म हो जाती है, जबकि नायक मनोहर अपनी पत्नी श्यामा को खोकर भी सैद्धांतिक-व्यावहारिक ज्ञान के कारण अपने तर्कों से सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव की इबारत रचता है। वह अपने अडिग व्यक्तित्व, ज्ञान, शील और तर्कशीलता से सहकर्मियों और पत्नी श्यामा के समक्ष रिश्वत और भ्रष्टाचार को प्रगति विरोधी साबित करने का अंत तक प्रयास करता रहता है। वह यह साबित करने के लिए निरंतर बहस करता है कि रिश्वत के जरिए पनपे भ्रष्टाचार की जड़ें ख़त्म करके ही समतापरक समाज बनाया जा सकता है। रिश्वत विषमता को जन्म देती है। दलित समाज की वैषम्य स्थितियाँ रिश्वत के कारण और अधिक बढ़ेंगी। वह अपने व्यावहारिक, वैचारिक एवं शैक्षिक ज्ञान से रिश्वत के कारण बढ़ रही असमानता को तार्किक ढंग से पुष्ट करता है, परन्तु वह अपनी पत्नी को समझाने में विफल हो जाता है। उसकी वह विफलता उसके जीवन की बड़ी त्रासदी तो बनती है, फिर भी वह अपने सिद्धांतों पर अंत तक अटल रहता है। श्यामा और मनोहर के पारिवारिक संस्कार एवं शिक्षण-प्रशिक्षण भिन्न होने के कारण उन दोनों के विचारों में मेल नहीं है। रिश्वत के विरुद्ध मनोहर का तर्क श्यामा की सोच में कोई परिवर्तन नहीं ला पाता और अंततः वह अपनी अज्ञानतावश तृष्णा के कारण घुट-घुटकर मर जाती है। श्यामा के इस घुटन के नेपथ्य में मात्र पारिवारिक संस्कार और शिक्षा कारक नहीं हैं बल्कि श्यामा के वैवाहिक जीवन-जगत के इर्द-गिर्द रिश्वत के परिणामस्वरूप विलासिता भरे जीवन की चमक-धमक उसकी सोच को प्रभावित करते हैं। दलित जीवन की ऐसी आकांक्षाओं की वैषम्य स्थितियों को आधार बनाकर उपन्यासकार ने आम जनमानस में व्याप्त रिश्वत के विरुद्ध विमर्श तैयार किया है। आरक्षण के प्रति नकारात्मक सोच और ऊँच-नीच के भाव-व्यवहार को पात्रों के चारित्रिक बहसों में लाना 'उत्कोच' उपन्यास की महत्वपूर्ण विशेषता है। कथाकार जयप्रकाश कर्दम ने अम्बेडकरवादी वैचारिकी के माध्यम से वैषम्यपूर्ण सामाजिक अभिप्राय को समझाने का प्रयास किया है। एक कथाकार अपनी वर्ग-चेतना एवं विचारधारा के माध्यम सेसामाजिक यथार्थ को रचनात्मकता में ढालकर आत्मचेतन नायकत्व के स्वरूप को उभारता है। मनोहर की वैचारिक प्रतिबद्धता एवं दृढ़ता

सुन्दरलाल जैसे चरित्र के आत्मचेतन विकास में परिणत होती है। पति-पत्नी के बीच रिश्वत और भ्रष्टाचार संबंधी बहसें लेखक की परिवर्तनकामी दृष्टि और उसके सरोकारों को पुष्ट करती हैं। उपन्यास के नायक मनोहर की अम्बेडकरवादी चेतना के माध्यम से वैषम्यपूर्ण व्यवस्था के कारकों को उजागर करना इस उपन्यास का मुख्य ध्येय है। मुख्य पात्र मनोहर द्वारा भ्रष्टाचार मुक्त आदर्श समाज एवं राष्ट्र निर्माण की प्रतिबद्धता, श्यामा का त्रासद अंत और सुन्दरलाल की बदलती सोच केंद्रित परिघटनाओं की कथा इस उपन्यास में विन्यस्त है।

उपन्यास के उद्‌भव काल से अब तक इसके स्वरूप और विकास के संदर्भ में दुनिया की सभी भाषाओं में समय, काल, स्थान और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन होता रहा है। समाज एवं राजनीति तथा साहित्य एवं आलोचना में नई प्रवृत्तियों एवं बहसों से भी उपन्यास के स्वरूप में बदलाव देखे जाते हैं। प्रेमचंद ने अपने लेख 'उपन्यास का विषय' के अंतर्गत स्वयं और वाल्टर बेसेंट के संदर्भ से लिखा है कि "उपन्यास का क्षेत्र, अपने विषय के लिहाज से, दूसरी ललित कलाओं से कहीं ज्यादा विस्तृत है। वाल्टर बेसेंट ने इस विषय पर इन शब्दों में विचार प्रकट किए हैं।" "उपन्यास के विषय का विस्तार मानव चरित्र से किसी कदर कम नहीं है। उसका संबंध अपने चरित्रों के कर्म और विचार, उनका देवत्व और पशुत्व, उनके उत्कर्ष और अपकर्ष से है। मनोभाव के विभिन्न रूप और भिन्न-भिन्न दशाओं में उनका विकास उपन्यास के मुख्य विषय हैं।"[1]

मनुष्य की बदलती चित्तवृत्तियाँ प्रत्येक विधा की आंतरिकता में बदलाव की बड़ी संकेतक होती हैं। समाज के विभिन्न चरित्रों का सृजन करके उपन्यास में उन पात्रों को ऐसे ढालना जैसे चलते-फिरते अपने ही आसपास के जीते-जागते अच्छे-बुरे लोग हों। लेखक की कथा संवेदना से प्रत्येक पाठक की संवेदना का साक्षात्कार होता है, जिससे वह कृति उसके जीवन में आईना का काम करने लगती है। पाठक यदि संवेदनशील है तो वह रचनाकार और रचना के सरोकारों को जीने लगता है और समाज एवं राष्ट्र की परिवर्तनकामी उन्नति में अपनी भूमिकाएँ सुनिश्चित करता है। उपन्यास और उपन्यासकार की यही विश्वदृष्टि उसे विशिष्ट और महान बनाती है। उपन्यास के संदर्भ में प्रेमचंद के विचार हैं - "मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[2]

'उत्कोच' मानव चरित्र का बेहतरीन चित्रांकन करने वाला उपन्यास है। एक प्रतिबद्ध रचनाकार अपनी रचनाधर्मिता से मनुष्य, समाज और राष्ट्र को सर्वोत्तम रूप में देखने का आकांक्षी होता है। समकालीन भ्रष्टता के दौर में मनोहर का चरित्र सत्य का सर्वोत्तम प्रतिरूप है, जिसे उपन्यासकार ने गढ़कर मानव-सृष्टि की बेहतरी के लिए